CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वत्याग

और

आत्मनिरूपण

ग्राहक आरक्षित

मू० ६२५०
ने० वि० पी०,
पुस्तकालय:
मू० २।—

त्रय ब्रह्मनिष्ठ डा० क्षितीशचन्द्र चक्रवर्ती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

प्राथना

आप को हम विश्वास दिलाते हैं कि इस ग्रन्थ के लेखक साक्षात् जीवन्मुक्त महात्मा पुरुष हैं। "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" इस श्रुति प्रमाण के अनुसार श्रीगुरुदेव के दर्शन, सेवा एवं उपदेश से पाप प्रक्षालन, श्रीवृद्धि एवं ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। आप शंकर वशिष्ठ दो महान् आचार्य के प्रतीक शास्त्रपारदर्शी एवं दृढ़ज्ञानी होने के कारण आपके सयकडों शिष्यगण अपने सच्चे सुख स्वरूप को पाकर कृतकृत्य बन गये हैं। आप ने मोक्ष की परम्परा एवं साक्षात् साधन—कर्म, भक्ति एवं ज्ञान का शास्त्रीय परिपाटी अनुसार व्याख्यान कर परमार्थ प्रेमियों के उपकार करने के उद्देश्य से नेपाल में एकविचारप्रधान आध्यात्मिक प्रतिष्ठान अद्वैत संस्था की स्थापना की है। चार अद्वैत विश्वविद्यालय एवं अद्वैत महाविद्यालय के माध्यम से आपका लोकोपकारी उपदेश नेपाल के जन-जन में व्याप्त हो रहा है। भारत, अमेरीका, जर्मन इङ्गलैन्ड आदि देशों में भी आप के परमार्थ विषयक हिन्दी, अंग्रेजी, नेपाली ग्रन्थों का प्रसार काफी जोड़ तोड़ से हो रहा है। हाँ, यह तो अवश्य ही मानना पड़ेगा कि जब तक श्रीगुरुदेव के साक्षात् दर्शन आप न कर लेंगे तब तक आप पूर्णतः उपर्युक्त कथन पर विश्वस्त न हो सकेंगे। अगर आप इस भयावह विकराल भवसागर से पार होना चाहते हों, तो यत्किञ्चित् भी विलम्ब न कर श्रीगुरुदेव की शरण ग्रहण कीजिये। आप का मानव जीवन सफल होगा।

हमारा यह निष्कपट अनुरोध आप के कल्याण सम्पादन में मदद करें, यही परमात्मा से प्रार्थना है।

"तारक" भवन थोर्गा रिडी, नेपाल
वि० सं० २०३०।६।५

सज्जनश्रेयोर्थी
धर्मनिष्ठ डिल्लीराज सरस्वती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वत्याग और आत्मनिरूपण

रचयिता

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ डा० क्षितीशचन्द्र चक्रवर्ती

(एम० ए० डी० फिल० वी० एल०)

संस्थापक—अद्वैत संस्था

कुलपति—अखिल अद्वैत विश्व विद्यालय, नेपाल

प्रकाशक

विलवाडुर पिया

अञ्चल प्रमुख अद्वैत संस्था नारायणी अञ्चल कार्यालय

क्षेत्रपुर नारायणगढ, चितवन, नेपाल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

● प्रकाशक :—

विलवादुर पिया

अञ्चल प्रमुख अद्वैत संस्था नारायणी

अञ्चल कार्यालय क्षेत्रपुर नारायणगढ,

चितवन, नेपाल

● आश्विन संक्रान्ति

वि० सं० २०३०

● सर्वाधिकार सुरक्षित : अद्वैत संस्था नेपाल

● मूल्य : २।–

● मुद्रक :

श्री माहेश्वरी प्रेस,

भाट की गली (गोलघर), वाराणसी-२२१००१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDE

सर्वत्याग और आत्मनिरूपण

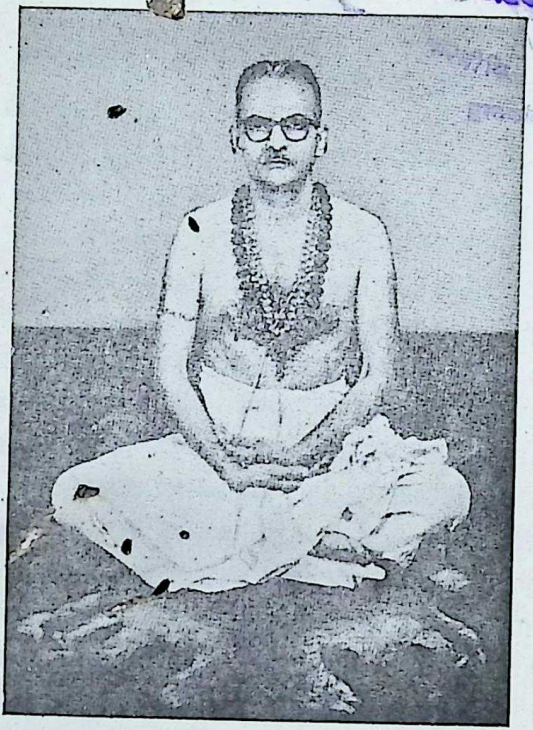

ब्रह्मनिष्ठ श्रीगुरुदेव पं० शिवराम पुरुषोत्तमानन्द

(डॉ० क्षितीशचन्द्र चक्रवर्ती एम. ए. डी.

फिल. वी. एल.)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

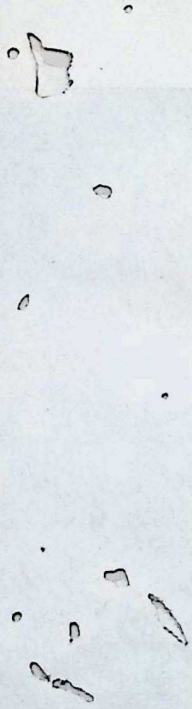

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आशीर्वचन

अद्वैत संस्था के भक्त द्वारा प्रकाशित पुस्तक पुस्तिकाओं की यह विशेषता होती है कि उनमें सम्पूर्ण द्वैत प्रपञ्च का श्रुति, युक्ति और विद्वद् अनुभव द्वारा निरसन पूर्वक केवल परिशिष्ट स्वयं प्रकाश मान अद्वैत निजी स्वरूप का प्रतिपादन किया जाता है। प्रसङ्गवश ईश्वर तत्व और मनुष्य के प्रारब्ध में अधिष्ठित ईश्वर स्वरूप का निरूपण भी उपलब्ध होता है। ईश्वर स्वरूप का निरूपण केवल द्वैत प्रपञ्च के आत्यन्तिक निरसन के लिये है। इस प्रकार जब निर्गुण ईश्वर की भक्तिपूर्वक जगत् निरसन होता है, तब उस निरसन की अवधि रूप से ब्रह्म से अभिन्न निर्गुण ईश्वररूप मुमुक्षु का निजी वास्तव स्वरूप स्वयं प्रकट हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्म की अभिव्यक्ति केवल निश्चल (अखण्डाकार) बुद्धि में संभव होती है।

अद्वैत संस्था के भक्त द्वारा प्रकाशित अद्वैत-तत्व प्रतिपादक पुस्तक पुस्तिकाओं के प्रकाशन में हृदयतः मेरा आशीर्वाद है। इसप्रकार अद्वैत-विषयक पुस्तक प्रकाशन से भगवान पशुपतिनाथ प्रसन्न होकर प्रकाशक के हृदय में स्थित पारमार्थिक अन्धकार को विनष्ट कर देते हैं और भक्त ईश्वर विज्ञानी बन जाता है।

लक्ष्मी-निवास
२२ कांग्रेस एक्जिविशन रोड
कलकत्ता—१७

—क्षितीशचन्द्र चक्रवर्ती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूमिका

'सर्वत्याग' और 'आत्मनिरूपण' ये दोनों लेख वाराणसी के प्रसिद्ध 'सिद्धान्त' में प्रकाशित हो चुके हैं। अद्वितीय विद्वान एवं जीवन्मुक्त महात्मा के इन लेखों को पुस्तकाकार में दिये जाने से मुमुक्षुगण अत्यन्त लाभवान बनेंगे इस आशय से अद्वैत संस्था ने यह प्रयास किया है। अतएव इन लेखों के प्रकाशनार्थ आर्थिक सहयोग करने वाले अत्यन्त निर्मलान्तःकरण श्रीविलबहादुर जी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। सर्वसाधारण के हाथ में यह ग्रन्थ रत्न आ सका यह आप को ही उदारता का फल है।

सर्वत्याग क्या है यह विषय सर्व साधारण के लिये अज्ञात है। शास्त्र के आशय को समझना सामान्य बात नहीं है। अतएव परम दयालु ब्रह्मनिष्ठ श्रीगुरुदेव ने कृपा कर इस विषय में लेखनी उठाई है और बड़े सरल एवं विस्तृत रूप से इस विषय को समझाने का कष्ट किया है। आज से करीब ३५ वर्ष पहले वाराणसी धर्मसंघ के चतुर्थ महाधिवेशन के अवसर पर (जो श्रीचक्रवर्ती जी तत्कालीन नेपाल सरकार की ओर से प्रतिनिधि बन कर नेपाल से भाग लेने काशी आये थे) श्रीलेखक महोदय से काशी के कई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिज्ञासुओं द्वारा सर्वत्याग, संन्यास और समाधि आदि कई सूक्ष्म विषयों पर प्रश्न किये गये थे। उसी सन्दर्भ में लिखा गया यह सर्वविज्ञान लेख है। और समाधि लेख भी ग्रन्थाकार में प्रकाशित हो चुका है। सर्वत्याग के बारे में शास्त्र, युक्ति एवं अनुभव पूर्ण जितनी बात बताई जा सकती है बताई गई है। विज्ञ पाठक श्रद्धापूर्वक पढ़कर स्वयं समझ सकते हैं।

ग्रन्थ का दूसरा भाग आत्मनिरूपण है। इसमें प्रमाण के बल पर आत्मा को दिखला दिया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि अब वेदान्त के पथिकों को आत्मा के वास्तव स्वरूप को अवगत करने में महान सुविधा मिलेगी।

धर्मनिष्ठ डिल्लीराज सरस्वती सहायक उपकुलपति तारक अद्वैत विश्वविद्यालय रिडी थोर्गा को मैं शतशः धन्यबाद देता हूँ जिनके महान त्याग एवं तपस्या से काशी में विभिन्न प्रकार की असुविधा का सामना करते हुये भी हमें श्रीगुरुदेव रचित हिन्दी के आठ महान ग्रन्थों का प्रकाशन करने में सफलता मिली। यदि ये सज्जन इतनी निष्ठा के साथ इस पुनीत कार्य में जुटे न रहते तो आज इतनी सुलभता के साथ ये ग्रन्थ रत्न हमारे हस्त गत न होते। इसके साथ ही मैं मेरे आत्मीय मित्र श्रीकुलपति सहचारी अनन्तलाल चुकेजी का आभारी हूँ, जिन्होंने आर्थिक कठिनाई को दूर करने के लिये ऋण लेकर भी रूपये भेजे। काशीवासी अद्वैत संस्था के भक्त वृन्द ने भी हमें हर प्रकार की सुविधायें पहुचायीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उन्हें धन्यवाद देता हूँ। इसके अलावा मेरी सहधर्मिणी श्रीमती हिमकुमारी देवी को भी मैं धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने धर्मनिष्ठ और मुझको पुस्तक प्रकाशन के समय काशी में रहकर अनेक सुविधायें पहुँचायीं।

श्रीगुरुदेव का वैशिष्ट्य आंज नेपाल में महान प्रतिष्ठान अद्वैत संस्था एवं हजारों शिष्य प्रशिष्य द्वारा मूर्तिमान बन गया है। अनन्त जन्म के पुण्योदय से ही आप की शरण ग्रहण करने का सुयोग मिलता है। यह बात तब प्रमाणित होती है जब की हम सच्चे दिल से उनसे संपर्क स्थापित करेंगे। आप के एक भी ग्रन्थ का श्रद्धासमन्वित हृदय से अध्ययन किया जाय और त्रिविध तापों से विमुक्ति न मिले, यह संभव नहीं है।

अन्त में मानव मात्र के हितैषी दया के मूर्ति श्रीगुरुदेव का कृपाकटाक्ष सदैव भक्त गण के प्रति बना रहे यही प्रार्थना करते हुये उनकी चिरायु एवं सुस्वास्थ्य के लिये भगवान विश्वनाथ के श्रीचरणों में अप्रार्थना करता हुआ यही विश्राम लेता हूँ।

विनीत
ज्ञानेश्वर सरस्वती
(देवेश्वर)

आश्विन संक्रान्ति २०३०
वाराणसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वत्याग और आत्मनिरूपण

श्री विलवादुर पिया
अञ्चल प्रमुख अद्वैत संस्था नारायणी अञ्चल कार्यालय
क्षेत्रपुर नारायणगढ, चितवन, नेपाल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

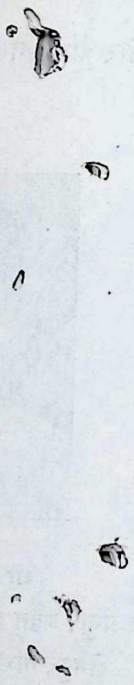

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द० ६२५०
. वा० वि० पी०, पुस्तकालय:
मू० २१-

सर्वत्याग और आत्म-निरूपण

सर्वत्याग

इस लेख में ऐक्यसाक्षात्कार के साधनरूप में बाह्य और आन्तर सकल दृश्य के परित्याग की आवश्यकता बतलाई जायेगी। इसके लिये पहले बाह्य आकाश से लेकर देहपर्यन्त समस्त मायिक प्रपञ्च का निरसन करके जगत् कल्पना के अधिष्ठानरूप में परिशिष्ट ब्रह्म को अपने आत्मरूप में निश्चय करना होगा। यह दृक्-दृश्य के अन्वय-व्यतिरेक के परिशीलन से सिद्ध होगा। बाह्य दृश्य वर्ग में द्रष्टारूप से अन्वित चैतन्य आत्मा सकल दृश्य प्रपञ्च से व्यतिरिक्त सिद्ध होने पर सर्वाधिष्ठान; शुद्ध निष्कृष्ट परमात्मस्वरूप ही बाँकी रहेगा। और वही प्रमाता के आत्मरूप में अनुभूत होगा अथवा द्रष्टा जीव; सत्स्वरूप होने से बाह्य दृश्य का परित्याग होने पर दृश्यावच्छिन्न ब्रह्मचैतन्य के साथ एकीभूत हो जायेगा और स्वयं निरावरण चेतनरूप होने से यह ब्रह्मैकता अनुभव सिद्ध होगी। इसके उपरान्त अज्ञान, जीवभाव, बुद्धि, मन, प्राण और इन्द्रिय रूप आन्तर (आध्यात्मिक) दृश्यजगत के निराकरणपूर्वक सूक्ष्मभूत कार्यपरम्परा के एक मात्र अधिष्ठान सच्चिदानन्द ब्रह्म में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निश्चित आत्म बुद्धि करनी होगी। यह साक्षी-साक्ष्य के अन्वय-व्यतिरेक के सम्यक् विचार द्वारा सिद्ध होगा। अन्तःकरण आदि के अदृश्य भाव को प्राप्त होने पर चिदाभास जीव स्वतः निराभास साक्षिस्वरूप में अवस्थित होगा, और बुद्धि आदि आन्तर साक्ष्य पदार्थ के साथ जितना असंश्लेष सहज सिद्ध होता जायेगा उतना-उतना अन्तःकरणादि का साक्षी कूटस्थ चैतन्य सम्पूर्ण जगत्-साक्षी निष्प्रपञ्च ब्रह्म चैतन्य के साथ एकीभूत होता जायेगा। इसतरह शुद्ध त्वं पद के अर्थ—कूटस्थ साक्षी चैतन्य का जगतकल्पना के अधिष्ठान ब्रह्म चैतन्य से एकीभाव का अनुभव सिद्ध होगा।

प्रश्न—इस ऐक्यानुभव का प्रधान साधन क्या है ?

उत्तर—ब्रह्म और जगत में कोई भेद नहीं है और ब्रह्म तथा असंग प्रत्यगात्मा में भी कोई भेद नहीं है। यह निःसंशय रूप से क्षण-क्षण में जान कर जब तक अनात्मवासना का परिक्षय न हो, तब तक 'मैं ब्रह्म हूँ' इस तरह यथाशक्ति ज्ञान का अभ्यास करना चाहिए।

प्रश्न—संशयरहित स्वरूप के क्षणिक साक्षात्कार से क्या मुक्ति नहीं होती ?

उत्तर—इस प्रश्नरूप संशय से ही यह ज्ञात होता है कि संशय (विक्षेप) की आत्यन्तिक निवृत्ति विपरीत भावना के सम्यक् अभाव (आवरण नाश) के विना नहीं हो सकती। अतएव सर्वनिरोध (आवरण-भंग) के अभ्यासार्थ प्रतिक्षण प्रत्यग्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रह्म की ऐक्याकार वृत्ति का प्रयत्न पूर्वक उत्थापन करना चाहिये। रूचि और सामर्थ्यानुसार चतुर्विध अन्वय-व्यतिरेक के परिशीलन द्वारा यथाशक्ति निःसन्देहरूप में ब्रह्मैकता का प्रतिक्षण अनुभव ही भेदविषयक संशयोच्छेद का एकमात्र कारण है। चित्त के निष्पाप होने पर भोगवासना निवृत्त होती है और ईश्वरानुग्रह से संशय विपर्यय रहित (निरावरण) ब्रह्मैक्यानुभव सम्पन्न होता है। जनकादि उत्तम महात्मा पुरूष का क्षणिक साक्षात्कार अन्तिम और अविपर्यस्त होने पर वह मोक्षप्रद होता है। मध्यम अधिकारी भी अभ्यास के फल स्वरूप कालान्तर में अन्तिम यथार्थ साक्षात्कार प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाता है।

प्रश्न—मध्यमाधिकारी का अभ्यास कैसा होगा ?

उत्तर—दृढतर असंभावना दोष होने से जो अधिकारी अन्वय-व्यतिरेक द्वारा अल्पकालीन विचार से आत्मतत्व को निश्चित रूप से नहीं जान सकता उसे मन्द अधिकारी कहा गया है। किन्तु जो अधिकारी दृढतर रागद्वेषादि रूप द्वैत-संस्कार के कारण व्याकुल होने से आत्मविचार करके आत्मतत्व में चित्त की स्थिरता सम्पादन नहीं कर सकता उसे मध्यम कहा गया है। प्रथम अधिकारी अन्वय-व्यतिरेक की सहायता से आत्मतत्व का विचार करेगा। दूसरा अधिकारी योगाभ्यास के द्वारा चित्त निग्रह अवश्य संपादन करेगा। मन्द अधिकारी अनुभवनिष्ठ आचार्य तथा सतीर्थ्यादि के पास रहकर उनके द्वारा दर्शित अन्वय-व्यतिरेक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूप युक्ति के पुनः पुनः अनुसन्धान तथा बुद्धि की सहायता से (धारणाद्वारा) देह इन्द्रियादि से भिन्न, पूर्वान्तर चिदात्मस्वरूप के पर्यालोचनरूप मनन का अभ्यास करेगा। मध्यमाधिकारी की प्रमाण या प्रमेयसम्बन्धी असंभावनाओं के निवृत्त हो जाने से और केवल द्वैतवासना दृढ़ होने से विपरीत भावना के कारण चित्त प्रतिक्षण विषय की ओर आकृष्ट होने से उसको जब तक सम्यक् बोध का उदय न हो तबतक केवल निदिध्यासन करना चाहिये। अनुकूल प्रदेश में स्थिति और सुखोपविष्ट होकर चक्षु वाक् आदि सब बाह्य इन्द्रिय तथा चञ्चल (अस्थिर) मन को बहिर्मुखता से रूद्ध करके बाह्य आभ्यन्तर किसी अनात्मविषयक ग्रहण वा चिन्तन से प्रत्याहृत एवं उपरत करके—निरवच्छिन्न परम सुख रूप चिदात्मा में समाहित रहकर विच्छेदरहित भाव से दीर्घकालतक ध्यानशील रहना चाहिये।

प्रश्न—मनोनिग्रह परिपक्व कैसे होगा ?

उत्तर—पुण्यप्रचय के अभाव में जिसका मन सहज में वशीभूत नहीं होता उसके लिये लालन और दण्डन ये दोनों उपाय शास्त्र में बतलाये गये है। चित्तलालन को राजयोग कहा गया है और अष्टांग योगाभ्यास, हठोपाय या प्राणचिन्तन कहा गया है। चित्त की बाह्यप्रवणता का निवारण करके प्रत्यक्प्रवणता के संपादनार्थ अभ्यास वैराग्य, विषय का दोषानुसन्धान, अमानित्वादि धर्मसंग्रह, मैत्री आदि भावना, असंग आत्मा का चिन्तन, द्वैत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संकल्पवर्जन, वासनाक्षय मनोनाश का अभ्यास, निश्चलध्यान-परता या आत्मव्यसनिता इत्यादि अनेक प्रकार के उपाय 'गीता', 'विवेक चूडामणि' आदि शास्त्रों में प्रदर्शित हैं। योगवाशिष्ठ में भुशुण्डोपाख्यान में बाह्याभ्यन्तर कुम्भक के अवलम्बन से आत्म-दर्शन के उपायस्वरूप प्राणचिन्ता की विस्तृत रूप से व्याख्या की गई है। जिस समय श्वासपूर्वक प्राणगति का अभाव होता है उस स्थिति को "बाह्य कुम्भक" कहा गया है। और जब श्वास-पूर्वक अपान गति का अभाव होता है तब वह 'आन्तर कुम्भक' कहा जाता है। विचारपूर्वक प्राणायाम का अभ्यास होने पर मुमुक्षु पुरूष के स्वल्प प्रयत्न से बाह्याभ्यन्तर भेदशून्य स्तब्धवृत्ति या 'केवल कुम्भक' सिद्ध होता है। इसतरह कुम्भका वस्था में प्राण के निश्चल हो जाने से प्रतिक्षण स्थिरीभूत अन्तःकरण में निरवच्छिन्न निरतिशय चित्सुखैकरस आत्मतत्व का अनुभव होता है। यह प्राणचिन्ता या स्वभ्यस्त प्राणायाम की सहायता से निगृहीत चित्त में आत्मानुभूति का—योगतारावली आदि ग्रन्थ में निर्दिष्ट-हठ योग नामक उपाय है। इसके नियमपूर्वक अभ्यास से स्वरूप का साक्षात्कार होने पर चिदानन्द रस में आप्लुत चित्त उसके साथ क्षण-क्षण में एकीभूत होकर क्रमशः निश्चलता को प्राप्त होता है।

प्रश्न—प्राणचिन्ता क्या स्वरूप चिन्तन से भिन्न वस्तु है ?

उत्तर—दोनों प्रकार के योग से ही प्रत्यक् तत्व का अनुभव (समाधि) होता है। सत्वप्रधान या रजोप्रधान अधिकारी के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भेद से ज्ञानसमाधि या प्राणसमाधि का अभ्यास शास्त्र में निरूपित हुआ है। दुर्दान्त चित्त का दमन करने के लिये प्राणाभ्यास आवश्यक है। प्राणाभ्यास से प्राण और अपान के सन्धि स्थल में अर्थात् पूर्वोक्त दोनों प्रकार की कुम्भका वस्था के अनुशीलन में स्थिरीकृत चित्त में सहज ही आत्मा का अनुभव होता है। ठीक इसीतरह लालन नामक राजयोग में भी मन के उपशान्त होने पर प्राण भी निश्चल हो जाता है। फलतः दोनों प्रकार की युक्ति की सहायता से परस्पर में सम्बन्धित प्राण और मन दोनों ही संयत एवं निगृहीत हो जाते हैं[१]।

टिप्पणी (१) मुमुक्षु दो प्रकार के होते हैं—(१) भीतर से सत्वप्रधान, परन्तु वाहर से तमोगुणप्रधान। शिव की—ईश्वर रूप में अनेक जन्मपर्यन्त—उपासना करने के फलस्वरूप शैव प्रकृति युक्त और (२) भीतर तमोगुणपूर्वक वाहर सत्व प्रधान विष्णु भगवान की उपासना के संस्कार से युक्त अधिकारी। प्रथम श्रेणी का मुमुक्षु चित्त की सात्विक प्रकृति होने से अत्यन्त निर्मलान्तःकरण, परन्तु वाहर तामस स्वभाव का दिखलाई पड़ने से कठिन या निर्दयी प्रतीत होता है। वैष्णव प्रकृति का मुमुक्षु भीतर से तमोवच्छिन्न होने पर भी वाहर से सात्विक स्वभाव युक्त या शान्त प्रतीत होता है। शैव प्रकृति वाले अधिकारी के विमल अन्तःकरण में चित् और जड़ का विवेक शीघ्र ही उदित होता है। इस श्रेणी का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्न—राजयोग के आठ अंग कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—आत्मयोग ग्रन्थ में बतलाया गया है कि—"देहाक्षादौ विरक्तिर्यम, इह नियमः स्वात्मतत्वेऽनुरक्तिर्बाह्यौदासीन्यमेवासन-ममुनियतस्त्वक्षरार्थो मृषार्थात्। प्रत्याहारः स्वबुद्धेर्विषयविमुखता धारणा स्वात्मनिष्ठा ध्यानं ब्रह्माहमस्मीत्यद्दगनहममोहात्मसाम्वित्

मुमुक्षु विचार मार्ग का अवलम्बी होकर भूमिका क्रम से आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करता है। वैष्णव संस्कारयुक्त मुमुक्षु—अन्तःकरण की जड़ता के कारण—आत्मा के विवेचन में समर्थ नहीं होता। ऐसा अधिकारी योगमार्ग का अवलम्बन करके क्रमशः प्राणनिरोधपूर्वक चित्तनिरोध सम्पावन करके स्वरूपसुख में विश्रान्त होता है। राजयोग ज्ञानमार्ग ही सुसाध्य और प्रत्यक्ष फलदायी है। ऐसा भगवान् वसिष्ठ तथा श्रीकृष्ण दोनों ने वतलाया है। 'समाधि' नामक लेख में योगमार्ग के अन्तिम अंग—समाधि—का विस्तृत रूप से निरूपण किया गया है। धर्मसंघ के चतुर्थ महाधिवेशन के अवसर पर काशी के कई सज्जनों ने आत्ममनन के उपयुक्त युक्ति और दृष्टान्त; संन्यास या सर्वत्याग का रहस्य तथा समाधि अभ्यास के विभिन्न प्रकारों के विषयों में प्रश्न किये थे। प्रस्तुत निवन्ध संक्षेप में उन सब प्रश्नों का उत्तर देने के प्रयास में लिखा गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समाधिः ।। अर्थात् देहेन्द्रियादि विषय में वैराग्य का नाम 'यम' और स्वात्मतत्व में अनुराग राजयोग में 'नियम' कहा गया है। बाह्य पदार्थों में उदासीनता ही 'आसन' है। पूर्वोक्त प्राण-अपान के लयकाल में आत्मा का स्वतः सिद्ध अनुभव ही प्राणायाम है। अन्यथा व्यापक वायु का निरोध संभव नहीं है। विषयचिन्तन का अभाव ही 'प्रत्याहार' बुद्धि को साक्षी चैतन्य में स्थापित करना 'धारणा', मैं 'ब्रह्म हूँ' इसतरह चिन्तन 'ध्यान' और दृश्यरहित तथा निरहंकार रूप से निरावरण चिन्मात्र स्वरूप में स्थिति ही 'समाधि' है। अन्यत्र भी कहा गया है—"देहेन्द्रियादिवैराग्यं यम इत्युच्यते बुधैः। अनुरक्तिः परे तत्वे नियमः परिकीर्तितः ।। सर्ववस्तुन्विदासीना वृत्तिरासनमात्मनः। जगत् सर्वमिदं मिथ्याप्रतीतिः प्राणसंयमः ।। चित्तस्यान्तर्मुखीभावः प्रत्याहारः स उच्यते। चित्तस्य निश्चलीभावो धारणासौ निगद्यते ।। सोऽहंचिन्मात्र[illegible] चिन्तनं ध्यानमुच्यते। ध्यानस्य विस्मृतिः सम्यक् समाधिरभिधीयते ।। ज्ञानी पुरूष देहेन्द्रियादि में वैराग्य को 'यम' और प्रकृष्ट आत्मतत्व में अनुराग को 'नियम' कहते हैं। सब द्वैत पदार्थों में चित्त की उदासीन स्थिति अर्थात् बुद्धि के आत्माकार में या सहज आत्मरूप में अवस्थान को आत्मा का 'आसन' कहते हैं। समस्त दृश्य जगत को मिथ्या जानना ही 'प्राणायाम' है। क्योंकि प्राण संयम सिद्ध होने पर केवल आत्मस्वरूप ही अनुभव में आता है। अतः प्रपञ्च की अनुपलब्धि को अकृत्रिम प्राणायाम कहना युक्तियुक्त ही है। चित्त की अन्तर्मुखता को 'प्रत्याहार' और उसके निश्चली-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाव को धारणा कहा गया है। "क्रिया और ज्ञानविशिष्ट जीवरूप में जो प्रमातृचैतन्य प्रत्यक्ष अनुभूत होता है, वही मैं वास्तव में शुद्ध चिन्मात्र हूँ" इसतरह चिन्तन करना ध्यान कहा गया है। ध्यान का सम्यक् विस्मरण अर्थात् 'मैं स्वरूप का चिन्तन करता हूँ' इस तरह ध्यानकालीन 'मैं' इस भाव से युक्त प्रयत्न के परित्याग पूर्वक एकरस चैतन्य वस्तु में मन की परिणामशून्य निश्चल स्थिति या अखण्डाकारता समाधि कही गई है।

प्रश्न—आत्मस्थिति का प्रतिबन्धरूप पाप किस तरह निवृत्त होगा?

उत्तर—अधिकारी भेद से उपर्युक्त मनन या निदिध्यासन के द्वारा निष्प्रत्यूह आत्मभाव उदित होता है। संकल्पत्याग, प्राण-स्पन्दननिरोध और मननात्मक विचार की सहायता से अथवा मैत्र्यादि सम्पादन द्वारा रागद्वेषादि के पूर्वावस्थारूप चित्तकषाय परिपाक, निष्काम, व्यवहार, सांसारिक भावना का परित्याग, शरीर की क्षणभंगुरता का स्मरण एवं अन्नदोषवर्जन इत्यादि उपाय से मोक्षधर्म के सम्यक् परिपालन से प्रतिकूल विघ्नसमूह निवृत्त हो जाता है। जगत् का मिथ्यात्व जब तक हृदय में उदित नहीं होता तब तक भोगवासना बढ़ती है। फलस्वरूप भेदवासना दृढ़तर होती जाती है और वैराग्य एवं मुमुक्षुता उत्पन्न नहीं हो सकती। अतएव स्वधर्मपालन द्वारा ईश्वर के सन्तुष्ट होने पर द्वैत जगत् में विरसता आ जाती है। आत्मप्रमादजन्य अशान्त चित्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का विषय में अनुराग ही सर्वप्रधान आध्यात्मिक विघ्न है और शुद्ध सात्विक पुरुष का विषयवैरस्य युक्त या प्रशान्त चित्त में स्वात्मतत्व का अनुभव ही उत्तम धर्म है।

प्रश्न—जगत्मिथ्यात्व के विषय में शास्त्र में क्या-क्या युक्ति और दृष्टान्त बतलाये गये हैं ?

उत्तर—इस विषय में पाँच प्रकार की युक्ति और उदाहरण अद्वैत शास्त्र में दिखलाई पड़ते हैं—(१) सदसद्विलक्षणता, (२) प्रतिपन्न उपाधि में त्रैकालिकनिषेध की प्रतियोगिता, (३) ज्ञान-निवर्त्यता, (४) स्वात्यन्ताभाव के अधिकरण में प्रतीयमानता और (५) सद्विविक्तता, प्रपञ्च मिथ्यात्व की यह पाँच प्रकार की युक्तियाँ निर्वचन हैं—(१) शुक्ति में रजतभ्रम, (२) रज्जु में सर्पभ्रम, (३) स्थाणु में पुरुषभ्रान्ति, (४) आकाश में नीलताभ्रम और (५) मरीचिका में जलभ्रम (मृगतृष्णा), प्रत्यक्परमात्मतत्व में मिथ्या जगत्प्रतीति के वे पाँच दृष्टान्त हैं। इन के सम्यक् परिशीलन से भ्रान्त चित्त या अज्ञानकार्य जगत् प्रपञ्च के मिथ्यात्वविषय में सहज में निश्चय होता है। मनन या यौक्तिक प्रत्यय की सहायता से परिशुद्ध अन्तःकरण में मायामय समस्त द्वैत पदार्थ का निषेधपूर्वक बाध करने पर बाध के अधिकरणरूप में—आवरण और विक्षेप-रहित—चिन्मात्र आत्मा स्वयं अनुभूत होता है। राजयोग या विचारमार्ग में यही 'सर्वत्याग' या महात्याग कहा गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्न—वह कैसे सिद्ध होगा ?

उत्तर—सर्व अनात्म वस्तु का त्याग का आदेश महर्षि अष्टावक्र ने राजा जनक को और देवगुरु बृहस्पति ने अपने पुत्र कच को दिया है। सर्वत्याग का उपदेश विदुषी हेमलेखा ने अपने प्रिय पति हेमचूड को और चूडालाने निजपति शिखिध्वज को दिया है। राजा शिखिध्वज अपने राज्य, गृह, देश और रानी इन सब का परित्याग करके निर्जन वन में तपस्या करते थे। राजा ने सोचा कि मैं सर्वत्यागी हो गया हूँ किन्तु धन, दारा, गृह, राज्य, भूमि और बन्धुवर्ग ये सब तो 'आत्मा' के नहीं अपितु अज्ञानकल्पित पदार्थ होने के कारण अभिमानी 'अहंकार' की सहायता से स्वीकृत हुये हैं। 'ये सब राज्यादि मेरे हैं' ऐसी कल्पना करके 'अहंकार' ही राज्यादि में स्वामीबुद्धि करता है। निर्विकार एवं परिपूर्ण आत्मा इन सब पदार्थों में ममत्वाभिमान नहीं करता, अतएव राज्यगृहादि 'निजसम्बन्धी' भी नहीं है और इयत्तापरिच्छेदयुक्त होने के कारण अनन्त या 'सर्व' भी नहीं है। इसीलिये जब तक 'अहंभाव' बाँकी रहता है तब तक 'सर्वत्याग'—सकल द्वैत पदार्थ का सम्यक् त्याग'—सिद्ध नहीं हो सकता; इसतरह चूडाला ने सर्वप्रथम शिखिध्वज के त्याग के विषय में सावधान किया। शिखिध्वज के वन, आश्रम, कुटी, कमण्डलु आदि अवशिष्ट ममतास्पद वस्तुओं का निःशेष त्याग कर देने पर उनके पवित्र चित्त में यत्किञ्चिद् विवेक का उदय होने पर क्रमशः 'अहंकार'रूप ग्रन्थि का परित्याग करके वे पूर्ण हो सकेंगे, ऐसा गूढ़ अभिप्राय मन में रखकर चूडाला

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ने पहले ममता के निवर्तक आधिभौतिक प्रपञ्चत्याग से शिखिध्वज को निवारण नहीं किया था।

प्रश्न—अष्टावक्र, बृहस्पति और हेमलेखा ने भी क्या सर्वत्याग का ऐसा ही उपदेश दिया है ?

उत्तर—हाँ, अष्टावक्र को धन; शरीर और मन अर्पण करके जनक बाहर भीतर व्यवहार शून्य और निश्चेष्ट होकर ब्रह्मैक्य उपदेश के उत्तमोत्तम अधिकारी हुये थे, ऐसा अष्टावक्र गीता से ज्ञात होता है। कच भी पिता के उपदेश से अनात्म अहंकार का त्याग करके निरहंकार आत्मस्वरूप के ग्रहण में समर्थ हुये, यह बात 'योगवाशिष्ठ' में सुन्दर रूप से वर्णित है। हेमचूडने भी विचार की सहायता से ममतास्पद कलत्र, राज्य, देह, इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि का परित्याग किया था और [illegible] सूक्ष्म आन्तर दृश्यरूप अहंकार, निद्रा, तेज, सुखाकार अविद्या वृत्ति और इनके अभिमानी द्रष्टा अहंकार का त्याग करके वे अहंपद के लक्ष्यार्थ परिशिष्ट चिन्मात्र स्वरूप में अवस्थित हुये थे, यह बात 'त्रिपुरारहस्य' के ज्ञानखण्ड में वर्णित है।

प्रश्न—अहंकार तो निजरूप है, फिर उसका त्याग कैसे किया जा सकता है ?

उत्तर—आधिभौतिक और आध्यात्मिक समस्त स्थूल और सूक्ष्म दृश्य साभास सात्विक चित्तरूप अहंकार द्वारा गृहीत होता है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतएव यह सब आत्मदृश्य अहंकार का है, साक्षी आत्मा का नहीं। आत्मा में इन सकल साक्ष्य वस्तुओं का संसर्गविशेष कल्पित होता है। पहले अन्तःकरण से आत्मा का तादात्म्याध्यास होता है। कूटस्थ चैतन्य में अध्यस्त अन्तःकरण के साथ अज्ञान में आत्मा का एकीभाव होने पर चिच्छायाविशिष्ट परिच्छिन्न अहंभाव उदित होता है। यह भ्रान्तिसिद्ध जीवभाव या अहंकार ही साक्षी चैतन्य का प्रथम कल्पित स्वरूप होने के कारण यह विकृत आत्मरूप ही आध्यात्मिक स्वकीय भाव है। इसलिये आत्मा के मुख्य परित्याग का विषय यह अनात्म ग्रन्थि अहंकार है। उसमें तादात्म्याभिमान करके ही आत्मा राज्यादि के स्वामी भाव को प्राप्त होता है; अतः अहंकार के परित्याग से ही अशेष राज्यादि अनात्म वस्तु का त्याग संभव हो सकता है। निराभास चित्स्वरूप में दृढ आत्मबुद्धि होने पर चित्तसापेक्ष दृग्भाव (अहंकार) स्वतः निवृत्त हो जाता है। बाह्याभ्यन्तर दृश्य वस्तु में उपेक्षा अच्छी तरह सिद्ध होने पर अभिमानी द्रष्टा (अहंकार) बाधित होकर स्वप्रकाश चिदात्मस्वरूप में स्वयं पर्यवसित हो जाता है। ममता और अहंकारास्पद समस्त दृश्य प्रपञ्च में एवं इनके अभिमानी अन्तःकरणविशिष्ट दृग् वस्तु में अनास्था उत्पन्न करने के लिये सूक्ष्म बुद्धिवृत्ति की सहायता से निज यथार्थ असंग निर्विकार साक्षिभाव का जब प्रतिक्षण पर्यालोचन किया जायेगा, तभी प्रमाता, कर्ता, भोक्ता, आदि मिथ्या विकारी अहंकार की शिथिलता हो सकेगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्न—शिखिध्वज ने फिर क्या किया ?

उत्तर—बाह्य सब उपकरणों को जलाकर शिखिध्वज ने जब सर्वत्यागसुख का अभिनय किया, तब चूडालाने कहा—"आप ने अब भी सर्वत्याग नहीं किया, जिस के परिणाम स्वरूप आप शोक रहित हो सकते हैं। यह सुनकर राजा भृगुपात द्वारा अवशिष्ट अपने शरीर का त्याग करने के लिये उद्यत हुये।

प्रश्न—चूडाला ने क्या कहा ?

उत्तर—आध्यात्मिक देहेन्द्रियादि द्वैत पदार्थ का त्याग उपयोगी और हिततम नहीं है। अतएव चूडालाने राजा को इस व्यर्थ प्रयत्न से निरुत्साह किया। अधिकारी को देह के विना ज्ञान-प्राप्ति और सर्वत्याग की सिद्धि संभव नहीं है। जिसतरह फल-भी वृक्ष वायु द्वारा स्पन्दित होकर फलाभिपात होने के [illegible]र्ग उत्पन्न दोष से दोषी नहीं होता उसीतरह सुख और दुःख का उत्पत्ति-स्थान होने के कारण स्थूल शरीर भी अपराधी नहीं हो सकता। देह के विक्षोभक अहंकार का परित्याग होने पर सर्वत्याग सम्पन्न होगा; अन्यथा शरीर नष्ट होकर भी पुनः उत्पन्न होगा। जन्म और कर्म के बीजभूत देह का भासक अहंकार ही प्रकृत दुरात्मा है। यह अहंकार ही सब वासनाओं का आस्पद है। इसलिये उसे 'सर्व' कहा गया है। सर्व विषय में प्रसृत होने के कारण सर्वगत है, और संकल्प की सहायता से सकल पदार्थ का जनक होने से सब का मूल कारण कहा गया है। सब वस्तुओं के आकार में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आकारित होता है; इसीलिये उसको चित्त कहा गया है; चेतनाँश का प्राधान्य होने से इसी का नाम जीव है और क्रियांश का प्राधान्य होने से इसीने प्राणसंज्ञा प्राप्त की है। चिज्जडग्रन्थि, भ्रान्ति, लिङ्ग शरीर, व्यवहारकर्ता पुरुष, और समस्त जगज्जाल को इस अहंकार ने ही धारण किया है। इस 'सर्व' नामक अविद्या या भ्रम का निःशेष परित्याग होने पर 'सर्वत्याग' और पूर्णानन्द प्राप्ति होगी। राज्यत्याग, पर्णकुटी के दाह या देहपात से नहीं।

प्रश्न—इस विषय में चूडाला का उपदेश विस्तृतरूप से बतलाइये।

उत्तर—राजा का दृढ़ वैराग्य देख कर उस शुभ-अवसर पर चूडाला ने शिखिध्वज से कहा—राज्य, देह, आश्रम आदि सकल द्वैत पदार्थ [illegible] चिद्स्वरूप इस मन का यदि आप त्याग कर सकें तभी सर्वत्याग सम्भव होगा, अन्यथा नहीं। देखिये, जो चित्त का त्याग नहीं कर सकते उनके लिए सकल धर्म, अधर्म या उनके फलत्याग का स्थान राज्य अरण्य केवल दुःख का हेतु हो जाता है। किन्तु चित्तरहित महापुरुष को सब अवस्थाओं में परमसुख का ही अनुभव होता है। बीज जैसे वृक्षरूप में परिणत होता है, वायु जैसे वृक्ष को कम्पित करता है, ठीक वैसे ही चित्त ही जगत्रूप में—देहादि समस्त आकार में—परिणत हुआ है और वही पापात्मा चित्त ही देह को क्षुब्ध करता है। प्रसिद्ध उपभोगसमूह, जरामरण आदि देहधर्म, महामुनि के शमदम आदि शुद्ध धर्म का—तत् तत्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वासनायुक्त चित्त ही—एकमात्र उद्धर्व स्थान है। द्वैतविषयक चिन्तन में रत चित्त मनोमय कहा जाता है; अध्यात्मप्राण की क्रियावश वह जीव कहा जाता है और आधिभौतिक स्थूल शरीर एवं बहुविध व्यापार को यह एक चित्त ही ग्रहण करता है। यह चित्त भीतर से शान्त होने पर महत् अहंकार, प्राण, प्रज्ञात्मा, (अविद्याग्रस्त सुषुप्त्यभिमानी जीव) आदि भिन्न-भिन्न क्रिया के अनुसार भिन्न-भिन्न नाम और रूप का परिग्रह करता है। हे राजन्! चित्त ही समस्त द्वैत प्रपञ्च है। चित्त का त्याग होने पर ही सकल आधिव्याधि का नाश होता है और तभी सर्वत्याग कहा है। इसका परित्याग होने पर प्रत्यगात्मस्वरूप परम सुख में विश्रान्ति प्राप्त होती है। बाह्यार्थ त्यागपूर्वक त्यागाकार वृत्ति और त्यागकर्ता अहंकार आत्मसम्वित् के बल पर परित्यक्त होने पर द्वैत कार्यजाल का आविर्भाव और तिरोभाव अत्यन्त [illegible] को प्राप्त होता है। परिच्छिन्नरूप में निज को जानने से यह सर्वत्याग सिद्ध नहीं हो सकता। परिच्छिन्न आप जैसे अन्य का त्याग कर सकते हैं; वैसे ही तत्कर्तृक त्यक्त पुरुष के भी आप त्याग के विषय हो सकते हैं। तभी तो आप ने अन्य के द्वारा त्याज्य होकर भी उस को ही (परिच्छिन्न 'आप' वस्तु को) ग्रहण किया। सुतराम् आप का सर्वत्याग कैसे सिद्ध हुआ? जिनको यदि अपरिच्छिन्नरूप में स्वीकार करें तो आप ही सब के अन्तरात्मा होंगे; अतएव कोई भी आप का त्याग न कर सकेगा। इस से आप त्याज्य कोटि में प्रविष्ट नहीं होंगे। इसतरह सर्व द्वैत पदार्थ में उदासीन रहकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वत्याग करनेपर सकल प्रपञ्च सर्वात्मा आप के निजस्वरूप में ही अन्तर्भूत हो जायेगा। सर्वत्याग द्वारा सर्वशून्यता होने पर भी परित्यक्त जगत को व्यवहार दशा में आश्रयान्तर के अभाव में त्यागी पुरुष को ही अवलम्बन करके सत्ता स्फूर्ति प्राप्त होगी। सुतराम् व्यावहारिक दृष्टि से सर्वत्यागी पुरुष ही भूत भविष्यत् और वर्तमान काल में अवस्थित सकल पदार्थ का एकमात्र लब्धा है। राज्य अरण्य इत्यादि सकल बाह्य स्थूल वस्तु के त्याग होने पर त्यागकर्ता आप जैसे अक्षतरूप में विद्यमान हैं, वैसे आध्यात्मिक सूक्ष्म, मन, अहंकार, अविद्या के परित्याग में भी चित्स्वरूप प्रत्यग् ब्रह्मरूप में परिशिष्ट रह जायेंगे।[1] निरहंकार आप में परित्यक्त, सर्वप्रपञ्च का अभाव होने पर भी आप सर्वदा स्फुरणरूप ही रहेंगे। अतएव आप में जड़भाव की प्रसक्ति नहीं हो सकती। चित्तक्षय

टिप्पणी [1] बाह्याभ्यन्तर दृश्य का ग्रहण और त्याग द्रष्टा अहंकार अन्तःकरण वृत्ति की सहायता से करता है, चिदाभास अहंकार का (जाग्रत् स्वप्न में) भाव और (सुषुप्ति में) अभाव साक्षी सामान्यरूप में (अविद्यावृत्ति के द्वारा) प्रकाशित करता है। अहंकार और अज्ञान का परित्याग ब्रह्मबल से (आत्मब्रह्माकारविशेष साभास अन्तःकरण वृत्ति के अवलम्बन से) सम्भव होता है और प्रत्यगात्मा स्वयं (वृत्तिनिरपेक्षरूप में) निज महिमा में नित्य प्रकाशमान है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होने पर निज आनन्दस्वरूप की निर्मल स्फुर्ति होने लगेगी। बाह्यार्थ के त्याग से—अहंकार के परित्याग हुए विना—दुःख-निवृत्ति नहीं हो सकती। देहस्थिति पर्यन्त प्रारब्ध द्वारा लाये हुए वैभव सहजसिद्ध भाव से (ईश्वरीय नियम अनुसार) महात्यागी पुरुष के स्वाभाविक (देहेन्द्रियादिकृत) त्याग के विषय में रह जायेंगे। सुतराम् सर्वत्याग होने पर ऐश्वर्य-हानि भी न हो सकेगी। अज्ञानसहित समस्त द्वैत पदार्थ का परित्याग होने पर उसके भी भीतर स्थित परम सुखस्वरूप आत्मा का सुस्पष्ट ज्ञान अवश्य ही होता है। अतएव सर्वत्याग आत्मज्ञान से वास्तव में भिन्न नहीं है। महाराज ! आप पहले सकल त्याज्य पदार्थों को मन की सहायता से परित्याग करके उसके उपरान्त जिस मन से सर्वपरित्याग किया उस मन को भी त्याग करके तदनन्तर 'मैं ने सर्व त्याग किया' इस मलिन अभिमान का भी वर्जन करके जीवदशा में शुद्ध निज मुक्त आत्मस्वरूप हो जाएँ।

प्रश्न—चित्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—दृढ़ राग या वासना ही चित्त है। उदासीन होनेपर चित्त त्याग सिद्ध होता है। इसके लिये चित्तवृक्ष के मूल अंकुर, शाखा और पल्लव का नाश करना होगा। तभी जन्म मरण प्रवाह-रूप संसरण (संसार) का अत्यन्ताभाव सिद्ध होगा।

प्रश्न—चित्तद्रुम के वीज अंकुर शाखा पल्लव क्या हैं ?

उत्तर—अज्ञात निजस्वरूप (सामान्य अहंभाव) चित्त की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्पत्ति का मूल है। परिच्छिन्न अहंकार—चैतन्यछायायुक्त होकर–प्रत्यक्ष स्फुरित होता है, यही चित्तवृत्ति का अंकुर है। क्योंकि यही परिमित व्यष्टि अहंकार का उपचय होने पर अंकुर वृक्षरूप में अभिवृद्ध होता है। विशिष्ट अहंकार का उदय होने पर देहादि आकार स्मरणपथ में आनेपर चित्त भाव उत्पन्न होता है और तद्विषयक संकल्परूप मनन होते-होते मन आविर्भूत होता है, इस तरह परिच्छिन्न अहंभाव का विस्तार होता है। आत्मा या देहादि सम्बन्धी निश्चय का नाम बुद्धि है। और जीव वास्तव में सर्वविकारशून्य होने से—मिथ्या चित्त और तद्धर्म का अनुभव करता है। स्नायु, अस्थि, और रक्त रञ्जित दृश्यमान स्थूल शरीर इस चित्तवृक्ष का स्तम्भ है, मूल से शाखा पर्यन्त मध्य प्रदेश है। भोगप्रद कर्म का उदय होने पर राग, द्वेष, प्रवृत्ति आदि रूप में स्फुरित वासना चित्तद्रुम का पल्लव है। इन्द्रिय अर्थ भाव-अभाव, जन्म-मरण आदि अशेष अनर्थ का निदान-रूप विषयभोग ही चित्तवृक्ष की दूर तक फैली हुई शाखा प्रशाखायें हैं। भोगासक्तिपरित्यागरूप चित्तवृक्ष की शाखा का छेदन करके असंग अद्वितीय आत्मस्वरूप के दर्शन में अत्यन्त प्रयत्न करने पर सर्वत्यागरूप कृतार्थता सिद्ध होती है।

प्रश्न—चित्तवृक्ष का शाखाकर्तन और मूलोच्छेदन कैसे किया जाय ?

उत्तर—शाखा प्रशाखारूप सुख दुःख प्रवृत्ति—युक्त विविध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वासनाओं के तत्वविचार की सहायता से अनुद्बुद्ध होने पर विवेक-बुद्धियुक्त अभ्यास के फलस्वरूप उसी से अभिमान या ममता निवर्तित होने पर स्वप्रकाश अद्वयात्मा में अवस्थान होते-होते चित्त का समूल उच्छेद हो जाता है। बीजभूत अहंकार का नाश हुये विना चित्तवृक्ष समूल नष्ट नहीं हो सकता। अतएव मूलोच्छेद के लिये तीव्र प्रयत्न करना आवश्यक है। "यह मैं यथार्थ में कौन हूँ" इस विचार से आरम्भ करके आत्मस्वरूप के अप्रति बद्ध साक्षात्कार में पर्यवसित होता है। मैं जगत नहीं हूँ, पृथिवी, वन, पर्वत कुछ भी नहीं हूँ, जड़ देहादि नहीं हूँ, उभयविध इन्द्रिय भी नहीं हूँ, मन, बुद्धि, अहंकार भी नहीं हूँ, क्योंकि ये सब जड़ दृश्य हैं। सुवर्ण में जिस तरह कटकादि रूप कल्पित होते हैं, उसी तरह चित्स्वरूप में विशेष और सामान्य अहंकार आरोपित मात्र हैं, यथार्थ नहीं। अहंकार आत्म स्वरूप [illegible] विदात्मा के ही प्रकाश से सत्ता और स्फुर्ति को प्राप्त होता है किन्तु स्वयं अपने आप को सिद्ध नहीं कर सकता। इसीलिये अहंकार जड़ पदार्थ है। चैतन्य स्वरूप आत्मा में अहंभाव अध्यस्त (कल्पित) रूप में प्रतीत होता है, अतः इसका मिथ्यात्व अनिवार्य हो जाता है, ऐसी युक्ति द्वारा अहंकार का निराकरण सिद्ध होने पर भी प्रत्यग् एक रस साक्षी चैतन्य का सम्यक् साक्षात्कार हृदय में उदित न होने तक कृतकृत्यता नहीं हो सकती। विवेक या यौक्तिक दृष्टि से अहंकार पर्यन्त दृश्यवृन्द के साक्षी; सम्पूर्ण दृश्यविवर्जित शुद्ध बोधस्वरूप निरहंकार आत्मतत्व के मननात्मक पर्यालोचन के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपरान्त समाधि का निरन्तर अभ्यास करना पड़ता है। निदिध्यासन का अवश्यम्भावी साधन युक्तिपूर्वक आत्मस्वरूप का विचार है।

प्रश्न—यह विचार कैसा होता है?

उत्तर—जैसे अहंकार से मन, मन से बाह्य अर्थ उदय होता है, वैसे अहंरूप सम्वेदन (परिच्छिन्न 'मैं' स्वरूप में अपने को जानना) किस कारण से आविर्भूत होता है?' इसका अन्वेषण करना होगा। जैसे बाह्यार्थ की अपेक्षा आध्यात्मिक प्रपञ्च सूक्ष्म एवं आत्मा का समीप वर्ती है, वैसे सम्वेदन के मूल का अनुसन्धान करने से देखा जाता है कि हिरण्यगर्भ विराट् आदि क्रम से देह और जगद्रूप सम्वेद्य का (व्यष्टि या समष्टि अहंकार रूप जीव को छोड़ कर अन्य पदार्थसमूह का) अभाव होने से अद्वितीय आत्मा सत्यत्व आदि का कारण नहीं हो सकता। अतएव चेत्य एवं चेतन का अभाव होने से अहंभावना जगद् वासना और देहादिकल्पना केवल नितरां निर्हेतुक, निरर्थक ही नहीं है, प्रत्युत अनर्थकर है।

प्रश्न—प्रत्यक्षरूप में उपलब्ध देहादि जगत्प्रपञ्च का अपलाप करना कैसे संभव है?

उत्तर—उपलब्धि ही सत्यता की निर्णायक नहीं हो सकती। क्योंकि भ्रान्ति से उपलब्ध पदार्थ में इसका व्यभिचार देखा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाता है। किन्तु विद्यमान कारण से ही कार्य की उत्पत्ति होती है वही सत्य होना युक्तियुक्त है। मायिक देहादि जगत का वास्तविक कोई कारण नहीं है। इसीलिये सकल दृश्य प्रपञ्च बन्ध्यापुत्र की तरह अत्यन्त मिथ्या है। मायाकृत अनित्य सृष्टि, स्थिति आदि व्यवहार में कोई सारवत्ता या वास्तविक सत्यता हो नहीं सकती। 'भगवान रूद्र और उनकी कृपा दृष्टि का पात्र हिरण्यगर्भ' इत्यादि मन्त्र वर्ण का गूढ़ अभिप्राय यही है कि परमेश्वर माया की सहायता से अपने में भेद कल्पना द्वारा यद्यपि पितामहरूप में उत्पन्न हुये हैं, तथापि अद्वितीय अपरिणामी ईश्वर में उत्पादक उत्पन्न आदि भेद भाव वस्तुतः संभव नहीं है। इसीलिये परमात्मा मायिक सृष्टि का वास्तविक कारण भी नहीं हैं। क्योंकि जड़ मायारूप कारण (जगत की बीजरूप अविद्या) शुद्ध बुद्ध सदा मुक्त ईश्वर स्वरूप में नित्य ही अविद्यमान है। इसीलिये वह सर्वदा अबाधित स्वयंप्रकाश अद्वितीय परमार्थ सत्यस्वरूप प्रत्यग् ब्रह्म के निश्चय द्वारा विराट् से लेकर स्तम्बपर्यन्त अनात्म एवं चिद्भास्य प्रपञ्च का दृढ़ सत्यतारूप भ्रम शिथिल हो जाता है। फिर सम्यक् तत्वसाक्षात्कार होने पर जगत का प्रतिभासरूप (ममता अहभाव वीजभूत) अवशिष्ट सामान्य सत्यताबुद्धि भी निःशेषरूप से निवृत्त हो जाती है ('समाधि' ग्रन्थ में इसका क्रमशः निरूपण किया गया है)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आत्मनिरूपण

(अन्वय-व्यतिरेक)

स्वकीय यथार्थ स्वरूप में सम्भावना बुद्धि का उत्पादन और असम्भावना आदि प्रतिबन्ध से रहित असन्दिग्ध ज्ञान दृष्टान्त तथा अनुमान की सहायता से स्वात्मतत्व का विचार होने पर—अच्छी तरह से होता है।[1] यहाँ मुमुक्षु जनों के ही श्रुति, अनुमान और

टिप्पणी (१) "अन्वयव्यतिरेकाभ्यां सर्वत्रैकं प्रपश्यति" किसी भी अवस्था में साक्षी आत्मा के अभाव का अनुभव किसी को नहीं होता, [illegible] का अभाव होने पर "मैं दुःखी हूँ" इत्यादि को [illegible] जानेगा ? विज्ञानस्वरूप आत्मा ही तो अन्तःकरण और अविद्या के वृत्तिसमूह के अवभासकरूप में सर्वदा अवस्थित है। एक अखण्ड अव्यभिचारी आत्मा प्रकाशकरूप में सर्वत्र वर्तमान न होगा, तो अन्तःकरण सम्बन्धी समस्त परिणामों का ज्ञान किस तरह हो सकता है ? अतः एकात्मरूप में स्वतः सिद्ध साक्षी (चेतन) द्वारा दृश्य-रूप वृत्ति के स्थूल सूक्ष्म आगमापायी या कादाचित्क विषय अर्थात् वृत्तिजन्य ज्ञान या अभाव प्रमारूप अज्ञान, दोनों ही उद्भासित होते हैं। "अन्वय व्यतिरेकाभ्यां जाग्रत्स्वप्न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण की सहायता से "अन्वय-व्यतिरेक" युक्ति द्वारा आत्म-स्वरूप का निर्णय किया जाता है।

अन्वय-व्यतिरेक के चार भाव हैं—(१) दृष्टृ-दृश्यभाव, (२) दुःखि-प्रेमास्पद, (३) साक्षिसाक्ष्यभाव और (४) अनुवृत्तव्यावृत्त-भाव। बाह्य घट से लेकर आन्तर अहंकार पर्यन्त समस्त अनात्म दृश्य प्रपञ्च के एकमात्र द्रष्टारूप में वर्तमान चिदात्मा समस्त दृश्य-वर्ग से व्यतिरिक्त है यह दिखलाना 'द्रष्टृदृश्य' रूप अन्वय व्यतिरेक का प्रयोजन है। दुःखादि से मिश्रित अहंकारादि में यद्यपि अधि-ष्ठानरूप से आत्मा अन्वित कहा जाता है तथापि निरवधि प्रेम का विषय होने के कारण आत्मा अहंकारादि से अत्यन्त भिन्न है, यह दूसरा 'दुःखिप्रेमास्पद' का अन्वय व्यतिरेक है। अज्ञानादि सकल दृश्यजात या साक्ष्य पदार्थ में प्रमाता ही निजीरूप में अनुभूयमान यह आत्मा साक्षीभाव से अन्वयविधि या युक्ति के पर भी वस्तुतः मन बुद्धि अहंकार एवं आदि परम प्रत्यगात्मा ही सिद्ध होता है, यह 'साक्षी-साक्ष्य' का अन्वय व्यतिरेक है। स्थूल, सूक्ष्म और कारणरूप भिन्न-भिन्न देह में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति

सुषुप्तिषु। यदेकं केवलं ज्ञानं तदेवास्मि परं बृहत्॥" व्यवहार दशा में घटादि सुखादि या वस्तु सामान्याभाव के उपलब्धा रूप में और परमार्थ दशा में जगत प्रपञ्च के साक्षात् एवं सम्यक् अदर्शन का हेतुभूत एकमात्र नित्य एवं अपरिच्छिन्न प्रत्यगात्मा ही सिद्ध होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदि परस्पर व्यावृत्त अवस्थाओं में उनके अनुभवकर्तारूप में अनुवृत्त आत्मा वस्तुतः देहादि सब से व्यतिरिक्त, निरवच्छिन्न ब्रह्मस्वरूप ही है, यह 'अनुवृत्त-व्यावृत्त' का अन्वय व्यतिरेक है। इन चार प्रकार के अन्वय व्यतिरेक का प्रयोजन दिखला कर; फिर 'पाँच उदाहरणों' की सहायता से जीव ब्रह्म की एकतारूप महावाक्य का अर्थ स्पष्ट किया जायेगा।

पहले द्रष्टृ-दृश्यभाव का विचार किया जाय। देह से लेकर अहंकार पर्यन्त सकल जड़ एवं परस्पर व्यभिचारी दृश्य समूह का प्रकाशक एक चेतनस्वरूप आत्मा ही हो सकता है। अनात्मा दृश्य वर्ग परस्पर व्यभिचारी हैं, और करणव्यापार की सहायता से इनकी उपलब्धि होती है। घट पट या शरीर सम्बन्धी ज्ञान के लिये चक्षुरादि वृत्ति का प्रयोजन होता है। प्राण, मन, बुद्धि पहले सामान्यरूप से [illegible] वृत्ति की सहायता से और बाद में विशेषरूप से तत् तत् अहंकार अन्तःकरण [illegible] होता है। जीवभाव और व्यष्टि समष्टि अहंभावरूप अतिसूक्ष्म दृश्यसमूह और त्रिपुटी प्रकाशक आत्मज्योति से ही सत्ता स्फूर्ति प्राप्त करता है। दृश्य वस्तु का परस्पर अभाव होने पर भी 'यह इस समय यहाँ नहीं है' 'सुषुप्ति अवस्था में मैं ने कुछ भी नहीं देखा' इत्यादि अभावज्ञान केवल आत्मचैतन्य से ही सिद्ध होता है। परन्तु आत्मा यद्यपि सर्वप्रकाशक या द्रष्टरूप में निर्दिष्ट हुआ है तथापि दृश्यसापेक्ष द्रष्टृता आत्मा का तटस्थ लक्षण मात्र है। आत्मा का वास्तविकस्वरूप दृश्यसंसर्गरहित, दृश्यधर्म से सर्वथा असंस्पृष्ट और दृश्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विवर्जित होना ही युक्तियुक्त है, क्यों[illegible] घटादि के द्रष्टा पुरुष में घटादि का तादात्म्यभाव, घटादि के धर्म का राहित्य और घटादि से पार्थक्य—असंगता—स्पष्ट ही दिखलाई पड़ती है। अन्यथा एक ही द्रष्टा में द्रष्टारूप में कर्तृभाव और दृश्यरूप में कर्मभाव, इस तरह उभयविध विरुद्ध भावों का समावेश [illegible] होगा, जो सर्वथा असम्भव है। अतः जैसे घटरूप दृश्य पदार्थ घट से विलक्षण द्रष्टा-पुरुष द्वारा ज्ञात होता है, वैसे ही देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि और अहंकाररूप समस्त स्थूल, सूक्ष्म अनात्म वर्ग दृश्यरूप होने से अपने से सर्वथा भिन्न साक्षी आत्मा द्वारा प्रकाशित होता है; यही निर्णीत हुआ। "चक्षुषो द्रष्टा मनसः साक्षी, बुद्धेः साक्षी, प्राणस्य साक्षी, तमसः साक्षी" "असङ्गो ह्ययं पुरुषः", "यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः। क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।" इत्यादि श्रुति-स्मृति वाक्य इस विषय में प्रकृष्ट प्रमाण हैं।

दूसरे अन्वय-व्यतिरेक से उपपन्न प्रेम के विषय मूर्त और दुःखासंभिन्न, एकरस सुखस्वरूप निज आत्मा का दुःखादिरूप में सदा परिणामशील बुद्धि अहंकार और जड़ तत्व में स्पष्ट पार्थक्य का निश्चय किया जाता है। दुःखादि दशा से भी जीव की बचे रहने की इच्छा से स्पष्ट ज्ञात होता है कि आत्मस्वरूप में सभी का निरवधि प्रेम है। सुख दुःख के आश्रयरूप में जिस आत्मा में यह प्रीति होती है यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अव्यभिचारी प्रेम के आस्पदीभूत आत्मा में आगमापायी सुख दुःख या परिणामी अन्तःकरण के धर्म नहीं रह सकते। कालान्तर में अनुभूत सुखादि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की आश्रयता के अनुसन्धान के फलस्वरूप भी वर्तमान काल में आत्मा में सुखादि की आश्रयता सिद्ध नहीं हो सकती, क्योंकि सुखादि स्वकीय होने पर भी उनमें इष्ट बुद्धि देखी जाती है दूसरे के सुखादि में प्रीति दृष्ट नहीं होती अतएव स्वतन्त्र, निज, सनातन आत्मस्वरूप में अवश्य ही निःसीम प्रेम उत्पन्न होता है। यदि आत्मा ही साक्षात् इष्ट बुद्धि का आस्पद न होगा, तो जैसे परकीय सुखादि में किसी का भी प्रेम नहीं देखा जाता वैसे ही स्वकीय सुखादि में जीव की प्रीति अनुपपन्न होगी। इसीलिये "आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति" इत्यादि श्रुति अपने लिये अनुकूल या उपकारी होने के कारण—जाया, भृत्य, क्षेत्र, वित्त आदि पदार्थ प्रिय होते हैं, ऐसा कहती है। अपने प्रतिकूल या अहित साधक होने पर पुत्र मित्र कभी भी इष्ट नहीं होते। अतएव कहना होगा कि सुखादि में जो प्रेम देखा जाता है वह भी आत्मप्रेमप्रयुक्त ही सम्भव है, स्वतः नहीं। यदि कहा जाय कि सुख में इष्ट-बुद्धि होती है, अतः सुखादि वृत्ति के आश्रयरूप आत्मा में प्रेम दृष्ट होता है तो परस्पर आश्रयता दुर्वार हो जायेगी। अतः कहना होगा कि सुख और प्रकाश-स्वरूप आत्मा ही निरुपाधिक प्रेम का आस्पद है। स्वकीय वास्तव-स्वरूप में दुःखादि का लेशमात्र भी सम्भव नहीं है। इसीलिये विवेक करने पर दुःखादि धर्मवान् अहंकारादि से यह आत्मा नितान्त पृथक्‌रूप में निर्धारित होता है। "तदेतत् प्रेयः पुत्रात् प्रेयो वित्तात् प्रेयोऽन्यस्मात् सर्वस्मादन्तरतमंयदयमात्मा" श्रुति के द्वारा आत्मा की सुखस्वरूपता ही सिद्ध होती है। निरवधि प्रेम का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषय होने के कारण आत्मा सुखरूप दुःखादि के लिये जीव जैसे कभी भी इच्छा नहीं करता, आत्मा वैसी नहीं है, यह इस विषय में अनुमान का स्वरूप है।

तीसरे साक्षिसाक्ष्यभाव द्वारा अविद्या अन्तःकरण तथा उसके धर्म स्वप्न मनोरथ आदि अशेष प्रातिभासिक प्रपञ्च के भाव और अभाव के साधकरूप में (वस्तुतः अविद्या आदि से सम्पर्कशून्य) साक्षी, कूटस्थ चिन्मात्र आत्मा सिद्ध होता है। अपञ्चीकृत भूत का कार्य होने से अविद्या आदि इन्द्रिय प्रमाण के सर्वथा अगोचर हैं। इसकी उत्पत्ति और विनाश का हेतु एकमात्र साक्षीस्वरूप आत्मा है। "आप ने जो कहा उसे मैं समझ नहीं सका, इस तरह सविषय अज्ञान का नियमपूर्वक अनुभव होने से वह प्रमाणज्ञान का विरोधी होने के कारण प्रमाणभास्य नहीं कहा जा सकता [illegible] गत्वा अज्ञान आदि साक्षिमात्र द्वारा [illegible] तरह अज्ञान विषयक अनुभव जैसे हम होता है [illegible] असम्भव होने से अज्ञान को ज्ञान का अभाव नहीं कहा जा सकता। पुनरपि ज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति का अनुभव होता है। ..... "ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः" इत्यादि श्रुति स्मृति प्रमाण की सहायता से भी ज्ञाननिवर्त्य अज्ञान ज्ञान के अभावरूप में उपपन्न नहीं हो सकता। अतएव ज्ञान पद के वाच्य समस्त वृत्तिज्ञान के अधिष्ठानरूप में विशेष वृत्तिज्ञान समूह में अनुगत स्वप्रकाश आत्मचैतन्य ही ज्ञानसामान्य है। विषयाकार विशेष वृत्तिज्ञान के द्वारा विषय का आवरण भंग होने पर तत्तद् विषय से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रञ्जितरूप में अभिव्यक्त है। यह ज्ञानसामान्य ही तत्तद् विषयक अज्ञान को निवृत्त करता है। इसीलिये "मैं समझ नहीं सका" इत्यादि स्थल में वह अर्थविषयक न जानना रूप अनुभव साक्षि-चैतन्य ही है। क्योंकि नित्य निरपेक्ष साक्षीभास्यता के विना "मैं यह समझ गया हूँ कि नहीं समझा" ऐसा अज्ञानविषयक संशयादि का कथन भी नियमपूर्वक अभाव न हो सकता। क्योंकि निश्चय-ज्ञान अनुभवरूप ही होता है।

इस प्रकार अहंकार और उसका धर्म वृत्ति ज्ञान आदि केवल साक्षी द्वारा प्रकाशित होता है। मन उसका प्रत्यक्ष नहीं कर सकता। इसका कारण यही है इच्छादि गुण रूप होने के कारण किसी आधार पर अवश्यमेव आश्रित रहेंगे। अनन्त कामादि के आश्रय [illegible] मन ही सिद्ध होता है। वृत्ति ज्ञानादि विषय में यह मन का [illegible] हीं हो सकता। जो जिसका उपादान कारण होता है वह उस [illegible] प्रमाण कैसे हो सकता है? "तीर्णो ही तदा सर्वान् शोकान् हृदयस्य भवति", "नामसंकल्पो विचिकित्सा" इत्यादि श्रुति और "शोकहर्षभयक्रोधलोभमोह स्पृहादयः। अहंकारस्य दृश्यन्ते जन्ममृत्युश्चनात्मनः" "मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः" इत्यादि स्मृति वाक्य समस्त वृत्तिज्ञान को मन का ही विकार या परिणाम सिद्ध करते हैं।

अथवा जिसे बहुत काल पर्यन्त अविच्छिन्न रूप से इष्ट देवता का ध्यान प्राप्त हुआ है उसे ध्यान के बाद "मैंने इतनी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देर तक हृदय में इष्ट देव का दर्शन किया और कुछ भी नहीं देखा" इस तरह तावत्काल स्थायी 'मैं' इत्यादि विषयक धारा-वाहिक प्रत्यय (ज्ञान) और 'और कुछ भी नहीं' यह अज्ञान का परामर्श दृष्ट होता है। ध्यानकाल में यदि अहंकार और अज्ञान का अनुभव न होता तो ध्यानोत्तर कालीन स्मृति सम्भव न होती क्योंकि पूर्वानुभूत विषय की ही स्मृति होती है। यहाँ पर उस उत्तर काल में विनष्ट प्रत्ययसमूह का [illegible] से अनुभव सम्भव न होने से सकल प्रत्ययों का साधक नित्य अनुभव रूप साक्षी अवश्यमेव निश्चित होगा।

प्रश्न—नित्य अनुभवरूप साक्षी तो किसी तरह संस्कार का उत्पादक नहीं हो सकता, अतएव साक्षीगोचर प्रत्यय की स्मृति कैसे संभव होगी ?

उत्तर—जिस वृत्ति [illegible] साक्षिकर्तृक [illegible] विषय अवभासित होता है, उस वृत्तिनाश के बाद तद्विषयगोचर संस्कार की उत्पत्ति में कोई बाधा नहीं हो सकती। घटाकार वृत्ति से उपहित साक्षिचैतन्य में घट, तदाकार वृत्ति, उसका आश्रय अहंकार, अहंकार का साक्षी और घटभिन्न अज्ञान इन पाँच पदार्थों का नियम पूर्वक प्रतिभास होने से घटकार वृत्ति का नाश होने पर उत्पन्न संस्कार से उक्त पाँच विषयसम्बन्धी स्मृति उत्पन्न होती है।

इस तरह स्वप्न, मनोराज्य आदि सकल विषय अपरोक्ष साक्षि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चैतन्य में माया द्वारा अ[illegible] होने से उनकी प्रत्यक्षता साक्षि-प्रसाद से सिद्ध होती है । एतद्विलक्षण स्वप्नादिविषयक स्मृति केवल स्मरणरूप होने के कारण (साक्षीचैतन्य में मायाकर्तृक आरोपित न होकर केवल स्मर्यमाण रूप में आरोपित होने के कारण) अपरोक्ष नहीं होती । जिस तरह अन्धादिकर्तृक स्मर्यमाण वस्तु में स्मर्यमाण शुक्लादि का आरोप या शब्द से शब्दार्थ की स्मृति प्रत्यक्ष नहीं हो सकती । उसीतरह यहाँ भी समझना चाहिये । अन्तःकरणादि घट की तरह दृश्य वस्तु होने के कारण अपने द्रष्टा नहीं हो सकते, किन्तु साक्षिचैतन्य ही उसका प्रकाशक होता है, यही अनुमान का प्रकार है ।

प्रश्न—[illegible] शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर—कूट[illegible] स्वप्रकाश आत्मा जब सत्वप्रधान अविद्या में प्रतिबिम्बित होता है, तब चिन्मात्ररूप में अनावृत रहता है । तमःप्रधान अविद्या युक्त होने पर निरतिशय आनन्दादि रूप में आवृत हो जाता है, और उदासीन एवं स्वयं प्रकाशरूप होने के कारण इसी को साक्षी शब्द द्वारा निर्दिष्ट किया जाता है । "नानाजीववाद' अविद्या भिन्न-भिन्न होने से वह साक्षी प्रति-जीव में असंकीर्ण और भिन्न-भिन्न रूप में स्थित होकर जाग्रदादि तीन अवस्थाओं के व्यवहार का निर्वाह करता है । 'एक जीव-वाद' में जीव की उपाधि अविद्या एक होने से एक ही साक्षी-अन्य उपाधि से निरपेक्ष होकर—सब जीवों की सुषुप्ति का साधक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता है। प्रतिजीव में भिन्न-भिन्न [illegible] व्यवस्थित जाग्रत तथा स्वप्न कालीन सुख दुःख का अनुभव और अनुसन्धानरूप सकल व्यवहार—उन-उन जीवों के अन्तःकरण द्वारा उपहित होकर एक साक्षी ही नियमपूर्वक—सम्पादन करता है। अविद्या में प्रति बिम्बित होकर वह साक्षी जब तक संसार बन्धन से विशेष रूप से मुक्त नहीं होता तब तक स्थूल एवं सूक्ष्म रूप में वर्तमान तत्तत् अन्तःकरण के साथ सम्मिश्रित होने के कारण प्रमातृता, कर्तृता आदि अन्तःकरण के सब धर्मों को भ्रम से अपने में ग्रहण करके मिथ्या ही संसारी भाव को प्राप्त होता है। बिम्बरूप साक्षी परमेश्वर अविद्या को वशीभूत करके सर्वात्मरूप में निरावरण चैतन्य, अपने में अध्यस्त मायिक प्रपञ्च के प्रकाशक और नित्य मुक्त भाव में अवस्थान करता है। दोनों मतों में [illegible] त्रय का साक्षी प्रत्यगात्मा वस्तुतः अभिन्न [illegible] और चिन्मात्र रूप में (अविद्याकृत भेद आरोपित [illegible] निरसन द्वारा) असंसारी ब्रह्म ही है। यही 'तत्वमसि' आदि महावाक्य द्वारा सिद्ध होता है।

अब चतुर्थ अन्वय-व्यतिरेक का विचार किया जाता है। 'मैं यहीं हूँ अन्यत्र नहीं हूँ' ऐसा अनुभव होने और मृत्यु काल में शरीर से उत्क्रमण स्वर्ग नरकादि में गमन एवं पुनः विभिन्न योनियों में जन्म इत्यादि विषय श्रुति में उक्त होने से जीव की परिच्छिन्नता की शंका उत्पन्न हो सकती है। चतुर्थ अन्वय-व्यतिरेक का प्रयोजन इसी भ्रम का निरसन करके जीव के अपरिच्छिन्न ब्रह्मस्वभाव का प्रदर्शन करता है। जैसे "यह स्थान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रदीप से प्रकाशित है" [illegible] अर्थ यही है कि "यह घट प्रदीप रूप प्रकाश से व्याप्त या परिच्छुरित है" वैसे हो "मुझसे यह अवगत हुआ है" इसका भी यथार्थ अर्थ यही है कि "मुझसे अभिन्न जो यह अवगति या ज्ञान है उसी का विषय हुआ है अर्थात् यह ज्ञानस्वरूप आत्मा से आच्छन्न या वेष्टित हुआ है"। इसी तरह समस्त दृश्यजात ज्ञाता का स्वरूप जो ज्ञान, उस से ही व्याप्त रूप में अनुभूत होता है। अन्यथा जब जड़ दृश्यवर्ग का अपने द्वारा या अन्य किसी की सहायता से प्रकाशित होना असंभव है (जड़ और प्रकाश परस्पर विरुद्ध है), तब जगद्विषयक [illegible] ही सिद्ध नहीं हो सकता। सुतरां प्रमाणसिद्ध ज्ञान से अज्ञान का नाश होता है, और स्वप्रकाश आत्मा के प्रसाद से जड़ वस्तु स्फुरित होती है, यहीं कहना होगा। आत्मा यद्यपि वस्तुतः असंग होने से [illegible] उसका कोई वास्तविक सम्बन्ध निरूपित नहीं हो सकता है, तथापि आत्मा के साथ कल्पित ऐक्य-वशात् "घट स्फुरित (प्रकट) होता है" इस तरह जड़ पदार्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। घटादि समस्त जड़ जगत के प्रत्यक्ष अनुभव के फलस्वरूप चैतन्यरूप आत्मा की सर्वगतता सिद्ध होती है। "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" "चिद्धीदं सर्वं काशते प्रकाशते च" "आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः", "नित्यः सर्वगतस्थाणुरचलोऽयं सनातनः" इत्यादि श्रुति स्मृति वचन इस विषय में प्रमाण हैं। इसीलिये "मैं यहीं हूँ" ऐसा परिच्छेद प्रतिभास और उत्क्रान्ति आदि श्रुतिवाक्य बुद्धि आदि उपाधिकृत मिथ्या सीमित भाव का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अवलम्बन करने से सार्थक होते हैं। "बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव" "ध्यायतीव लेलायतीव" "अविभक्तं च भूतेषु", "एवं बुद्धिगुणान् पश्यन् अनीहोऽप्यनुकार्यते" इत्यादि अनेक श्रुति स्मृति वचन आत्मा के परिच्छिन्न भाव को उपाधि परिकल्पित सिद्ध करते हैं। सुतरां स्वतः अपरिच्छिन्न चित्प्रकाश आत्मा तादृश ब्रह्म स्वरूप ही है, ऐसी प्रत्यग्ब्रह्म की एकता—चतुर्विध अन्वय व्यतिरेक के परिशीलन से सकल विघ्न नाश होने पर शास्त्रीय श्रवणादि में अधिकारी मुमुक्षु को 'तत्वमसि' इत्यादि महावाक्य द्वारा सुगम रूप से—निश्चित होती है। हाँ, उपाधि की सहायता से परिच्छिन्न प्रतीत होने पर भी आत्मा सर्वगत और निर्लेप है। जैसे घटाकाश महाकाशरूप में प्रतिभात होने पर भी वस्तुतः आकाश [illegible] च्छिन्न और असंग ही रहता है, यह अनुमान का प्रयोग। अब आगे पाँच उदाहरणों की सहायता से [illegible]य दृढ़ किया जायेगा।

प्रश्न—अच्छा, तप्त लौह [illegible] अग्निशक्ति अग्निरूप उपाधि-कृत होने पर भी यह सत्य ही दिखलाई पड़ता है कि जो दाहादि क्रिया अग्निमात्र में सम्भव है वह अयःपिण्ड में प्रत्यक्ष दृष्ट होती है इसीतरह जीव में कर्तृत्व भोक्तृत्व स्वभाव बुद्धिरूप उपाधिकृत होने पर भी जो कारण स्वर्ग नरक प्राप्ति का हेतु होता है वह कारण सच ही कहना पड़ेगा, अतः जीव निर्विशेष ब्रह्म हो नहीं सकता।

उत्तर—नहीं यह ठीक नहीं। जपा कुसुमादि के सन्निधान में जैसे स्फटिक में रक्तिमा दिखलाई पड़ने पर भी वह मिथ्या ही सिद्ध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती है, स्फटिक किसी भी [illegible] से लाल नहीं हो सकता, वैसे ही लौह में भी दाहशक्ति मिथ्या ही प्रतीत होती है। लौहपिण्ड स्वयं किसी भी तरह दाह नहीं कर सकता। अयःपिण्ड के साथ संश्लिष्ट रूप में अभिव्यक्त वह्निशक्ति अग्नि की ही दाहहेतुता सिद्ध करती है, लौहपिण्ड की नहीं। रक्त स्फटिक के दृष्टान्त से लौहित्य का मिथ्यात्व स्पष्ट ही समझ में आता है, क्योंकि स्फटिक अपने पूर्व-सिद्ध शुद्ध शुक्ल रूप में ही स्थित है। उसमें वास्तव रक्तिमा जैसे किसी भी समय आ नहीं सकती। वैसे ही लौहित्यनाश का भी जोड़ना चाहिये। अर्थात् अहंकारादि उपाधि के कारण जीव में [illegible] भी मिथ्या ही भासित होते हैं। कर्तृत्वादि अहंकार के ही धर्म हैं, [illegible] के नहीं। श्रुति और स्मृति यही सिद्ध करती है कि कर्तृत्वादि बुद्धि के स्वाभाविक धर्म होने पर भी प्रमातृ आदि भाव के आश्रय से अन्तः[illegible] में आरोप और आत्मा के अन्तःकरण से लिप्त [illegible] के कारण चैतन्यस्वरूप आत्मा में मिथ्या कर्तृत्व भोक्तृत्व रूप का प्रतिभास होता है, पर चिदात्मा स्वकीय यथार्थ रूप में सर्वदा निर्विकार स्थित है।

प्रश्न—प्रमातृत्व आदि भाव तो ज्ञानादि विषय में प्रयोज्य होने के कारण उनकी केवल जडधर्मता सम्भव नहीं है। अतः चिदात्मा को ही ज्ञाता कहना होगा।

उत्तर—नहीं। यद्यपि अविवेकवशात् बुद्धि और आत्मा के संयोग से ज्ञातृत्वादि सम्भव होते हैं, इसीलिये ज्ञानादि केवल जड़-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बुद्धि के धर्म नहीं, अपितु बुद्धिसाक्षी आत्मा के या बुद्धि में अनुप्रविष्ट चैतन्य के ही अज्ञानकालीन धर्म हैं। तथापि प्रमातृत्वादि परिणामी अन्तःकरण के सजातीयभाव होने से उनका स्वभावतः अन्तःकरण के धर्म होना ही संगत है। चैतन्य आत्मा कूटस्थ स्वतः और सर्वदा अविकारी होने से कर्तृत्वादिधर्मयुक्त अन्तःकरण रूप उपाधि के संयोग से केवल चिदात्मा में कर्तृत्व ज्ञातृत्व आदि प्रातिभासिक होते हैं। अतएव जैसे स्फटिक में लौहित्य सर्वथा मिथ्या है, वैसे ही आत्मस्वरूप में बुद्धि आदि उपाधिकृत ज्ञातृत्व आदि भी सर्वथा मिथ्या है। इस तरह वस्तविक अकर्ता, अभोक्ता, चित्स्वरूप आत्मा की असंसारी ब्रह्मरूपता सहज में ही अवधारण की जा सकती है।

प्रश्न—रक्त स्फटिक का प्रथम उदाहरण विषम प्रतीत होता है क्योंकि स्फटिक के समीप तो वैसे पदार्थ रह सकता है, वैसे अद्वितीय आत्मा के समीप तो अन्य कोई उपाधि है ही नहीं है। इस विषय में क्या और दूसरा उदाहरण है ?

उत्तर—निरुपाधिक रज्जुसर्प का दूसरा उदाहरण है। उपाधि रहित रज्जु में जिस तरह सर्प का आरोप देखा जाता है, उसीतरह चिदात्मा में भी बुद्धि आदि का ध्अयास और तन्मूलक कर्तृत्वादि धर्म का अध्यास उपपन्न होता है। इसतरह रज्जुसर्प के दूसरे उदाहरण से भी चिदात्मा अकर्ता होने के कारण अकर्तृ ब्रह्मरूप होना योग्य है, यह सिद्ध होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्न—जीव और [illegible] का भेद तो स्पष्ट ही प्रतीयमान होता है, फिर उनका अभेदानुभव प्रामाणिक कैसे हो सकता है ?

उत्तर—उस विषय में बिम्ब-प्रतिबिम्ब का उदाहरण लिया जा सकता है। जैसे बिम्ब और प्रतिबिम्बिका भेद तात्विक नहीं, अपितु उपाधि निबन्धन प्रतीत होता है, वैसे ही जीव और ईश्वर में जो भेद भासमान होता है वह अविद्यक और मिथ्या ही सिद्ध होता है। यहाँ शुद्ध ब्रह्म बिम्ब स्थानीय है। अज्ञानरूप दर्पण में उसी का प्रतिबिम्ब स्थानीय जीव [illegible] यतः एक होने पर भी अन्य स्थावर जंगमरूप नाना जीव एक स्वप्न द्रष्टा से भिन्न स्वप्न कालीन अ[illegible] जीवों की तरह जीवाभास मात्र हैं। अतएव एक जीवरूप प्रतिबि[illegible] ईश्वररूप बिम्ब से सर्वथा अभिन्न है। किन्तु मायावशात् पृथक् जीवरूप [illegible] बिम्बरूप ईश्वर से भेद, अल्पज्ञता, अल्पशक्ति मत्ता, परिच्छिन्न[illegible] एवं इन समस्त जीव धर्मोंका प्रतीतिरूप ज्ञान भ्रमसे उ[illegible] है। इस उदाहरण की सहायता से विचार करने[illegible] और ईश्वर के भेदभाव का मिथ्यात्व निश्चित होगा और भ्रम वाधित हो जायेगा। अतएव बिम्बप्रति बिम्बरूप तीसरे उदाहरण की सहायता से अभेदानुभव की यथार्थता में लेशमात्र भी दोष नहीं रह सकता।

प्रश्न—देहादि संघातरूप उपाधियुक्त आत्मा जीव कहा जाता है, इसतरह जीवका संघात के साथ ही संसर्गराहित्य और संघातधर्म जन्ममरण से असंस्पर्श कैसे सिद्ध हो सकता है ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तर—घटाकाशरूप चौथे उदाहरण की सहायता से इसका समाधान हो सकता है। धूमादि के साथ घटाकाशका सम्पर्क भासमान होने पर भी घटाभ्यन्तरवर्ती आकाश जिस तरह वस्तुतः धूमादि से संस्पृष्ट नहीं हो सकता, उसीतरह प्रत्यगात्मा भी संसारी और संघात से अहन्ता ममता रूपमें युक्त प्रतीयमान होने पर भी वास्तव में देह स्त्री पुत्र गृहादि से असंसर्गी और जन्ममरण सुख दुःख से रहित असंग ब्रह्म रूप ही है। जैसे घट के साथ आकाश का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता, वैसे ही चिदात्मा का संघात के साथ अहंमम रूप संग (परिच्छेद व्यावृत्त) सर्वथा भ्रम रूप है।

प्रश्न—पहले कहा गया है कि प्रतिबन्धक रहित [illegible] को 'तत्वमसि' आदि महावाक्य से अखण्ड ब्रह्म से [illegible] सहज में अवधारित होता है किन्तु कोई लौकिक वाक्य उस अखण्डार्थ के प्रतिपादक रूप में प्राप्त नहीं होता। पर्याप्त

उत्तर—"सोऽयं देवदत्तः" वाक्य [illegible] अखण्ड [illegible] का प्रतिपादक है। यह पाँचवें उदाहरण रूप में ग्रहण करने योग्य है। "प्रकृष्ट-प्रकाशश्चन्द्रः" इत्यादि रूप वाक्य भी इस विषय में उदाहरण स्वरूप में लिया जा सकता है। जिस तरह 'वह' और 'देवदत्त' यह दोनों शब्द केवल एक मनुष्य शरीर मात्र को लक्ष्य करते हैं। अथवा जिसतरह 'प्रकृष्ट प्रकाश' और 'चन्द्र' एक अद्वितीय वस्तु को बतलाते हैं उसी तरह 'तत्' और 'त्वं' शब्द एक अखण्ड प्रत्यक्ब्रह्म के ही द्योतक होना संभव है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्न—अस्तु, [illegible] उत्पन्न जो ज्ञान है वह तो परोक्ष ही होता है। यहाँ भी महावाक्यजन्य ज्ञान परोक्ष ही होगा।

उत्तर—'दशमस्त्वमसि' इस पञ्चम उदाहरण के अन्तर्गत लौकिक वाक्य जैसे अपरोक्ष ज्ञान का जनक होता देखा जाता है, वैसे ही श्रुतिवाक्य से भी अपरोक्ष ज्ञान या प्रत्यग्ब्रह्म का एकतानुभव प्रत्यक्षरूप में होना सुसंगत है। किसी समय एक गुरु ने दश' सरलबुद्धि शिष्यों को किसी कार्यवश दूसरे गाँव में भेजा। मार्ग में नदी पार कर दूसरे पार पहुँचने पर हम सभी पार पहुँचे या कोई जल में डूब गया यह जान लेने के लिये प्रत्येक ने अपने को छोड़ कर दूसरों की गिन्ती करने पर केवल नौ व्यक्तियों को [illegible] और अपने आप को न गिनने के फलस्वरूप एक को खो बैठने का [illegible] प्राप्त किया। इस तरह सभी ने दशवें व्यक्ति को जल प्रवाह में बहा गया [illegible] कर शोकाकूल होते हुये उसका पत्ता लगाने के लिये नदी [illegible] नदीस्रोत का अनुसरण करते करते एक दूसरे पुरुष को देखकर उससे पूछा—क्या आप ने हम लोगों में से दशवें व्यक्ति को जल में बहते देखा है? बुद्धिमान आगन्तुक पुरुष ने यह सुनकर ऋजुबुद्धि उन दशों को गीना और कहा—'आप दशों पुरुष वर्तमान हैं, आपमें से कोई भी खोया नहीं है।' यह सुनकर उनमें से एक ने मूर्ख की तरह अपने को छोड़कर बाँकी नौ जनों को गीन कर कहा—'हम लोग तो केवल नौ व्यक्ति ही हैं; हममें से दशवाँ व्यक्ति कहाँ है?' आगन्तुक ने कहा—'तुम ही दशम हो' 'मैं ही दशम हूँ' यह एकाग्रतापूर्वक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रवण करके वह अपने आप को ही [illegible] में प्रत्यक्ष जानकर शोकरहित हो गया। इसतरह अन्य तो पुरुष ही सभी अपने को दशम पुरुष जानकर सुखी हुये।

❀ समाप्त ❀

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाल्मीकिविद्यापीठपुस्तकालयः

प्रत्यावर्तनतिथिः

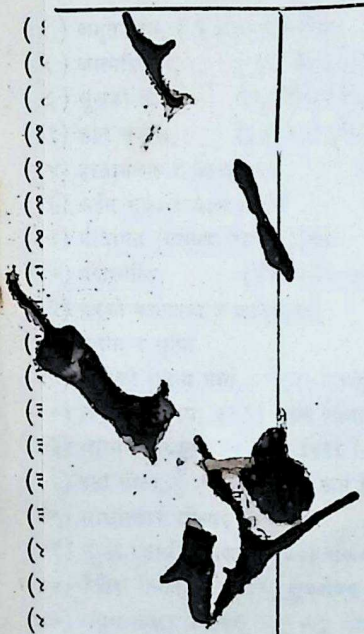

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रह्मनिष्ठ श्रीगुरुदेव डॉ० द्वितीशचन्द्र चक्रवर्तीजी क
भक्ति, ज्ञान, समाधि, सम्[illegible], जीवन्मु
विदेह मुक्ति आदि शास्त्रीय विषयों की गम्भ
एवं विशद विवेचनाओं से पूर्ण कृतियाँ—

हिन्दी में

(१) स्वरूपानुभव
(२) भगवान विश्वनाथ का स्वरूप
(३) वेदान्त विज्ञान
(४) सर्व विज्ञान
(५) समाधि
(६) साधन सार संग्रह
(७) तैत्तिरीय उपनिषद्
(८) छान्दोग्य उपनिषन्
(९) आनन्दमयकोश विवचन
(१०) वेदान्त रहस्य
(११) [illegible]र्वत्याग या सन्यास
(१२) आत्मनिरूपण
(१३) भक्ति और ज्ञान
(१४) क्षेत्रज्ञ
(१५) प्रबोध पञ्चक
(१६) प्रपञ्च प्रतीति
(१७) सृष्टि समीक्षा

संस्कृत में

(१) वेदान्तरहस्य प्रश्नोत्तरी

अंग्रेजी

(1) Vision of Reality
(2) [illegible] Panacea
(3) Simple English Reader

पुस्तक प्राप्ति स्थान :—

साझा प्रकाशन

केन्द्रीय कार्यालय—पुल चौक, काठमाडौं एवं भैरहव
विराट नगर, पोखरा आदि

तथा

साझा प्रकाशन की शाखायें एवं उपशाखायें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu